Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-155-159

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 155-159
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

सुषमा मुण्डू
शोधार्थी,
विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची.

Corresponding Author :

सुषमा मुण्डू
शोधार्थी,
विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची.

हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथा लेखन के परिप्रेक्ष्य में 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' का एक समीक्षात्मक अनुशीलन

शोध–सार : बाबा साहब भीमराव अंबेडकर जैसे कई अन्य महामानवों की प्रेरणा से तमाम भारतीय भाषाओं में दलित आत्मकथा लेखन का आरंभ हुआ। यद्यपि स्वयं अंबेडकर साहब अपनी आत्मकथा नहीं लिख सके लेकिन उनकी इच्छा जरूर थी कि वे अपनी आत्मकथा लिखते। मराठी साहित्य में जब दलितों ने अपनी आत्मकथाओं को लिखना आरम्भ किया तब उसका विस्तार हिंदी भाषी क्षेत्र में भी हुआ। एक बार जब हिंदी में दलित आत्मकथाएं लिखी जाने लगीं तो फिर दलित साहित्यकारों ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पिछली सदी के अंतिम दशक में दलित आत्मकथा लेखन की प्रवृत्ति हिंदी साहित्य में उभरकर मुख्यधारा के हिंदी साहित्य में अपना स्थान बनाती हुई नजर आती है। आज न केवल दलित विमर्श हिंदी साहित्य में अपने उत्कर्ष पर है बल्कि हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथा लेखन भी अलंघनीय ऊंचाइयों को प्राप्त कर चुका है। प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' कई मायनों में विशिष्ट है, इसी लिए इसकी समीक्षा करना समीचीन मालूम पड़ता है।

बीज शब्द : आत्मकथा, दलित साहित्य, आंबेडकरवादी साहित्य, शोषण, उत्पीड़न, इक्कीसवीं सदी।

प्रख्यात शिक्षाविद् और हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन का आरंभिक जीवन इतना तकलीफदेह और त्रासद रहा है कि उस दौर में शायद ही कोई कल्पना कर सकता था कि इन अभावों से जूझता हुआ बालक एक दिन देश के शीर्षस्थ विश्वविद्यालय के किसी विभाग का अध्यक्ष बनेगा। स्वाभाविक है यह बेचैन जी की जिजीविषा और जीवटता ही थी जिसने उन्हें इन ऊंचाइयों तक पहुंचाया। विषम परिस्थितियों से लड़ते हुए बेचैन जी ने

कमी आत्मसमर्पण के विषय में नहीं सोचा। बचपन में ही अपनी आंखों के सामने विवाह समारोह में अपने पिता को अंधविश्वास की बलि चढ़ते देखने के बावजूद उनके कदम कभी नहीं लड़खड़ाए। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उनमें बचपन से ही नेतृत्वकारी क्षमता थी। इसी लिए उन्होंने केवल रट्टा मार पढ़ाई नहीं की बल्कि जहां दलितों का शोषण और उत्पीड़न होता दिखा वहां उन्होंने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। अंबेडकरवादी साहित्य से जब वे रुबरु हुए तब उनके व्यक्तित्व को और पैनी धार मिली। डॉ. जोगीराम ने बेचैनजी के संदर्भ में लिखा है कि "वे अपनी चेतना के निर्माण में अंबेडकर के प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं।"[1] चेतना के निर्माण में जहां उन्होंने अंबेडकर को अपना प्रेरणा स्रोत माना है वहीं लेखन के क्षेत्र में प्रवृत्त होने से पहले उन्होंने विपुल मात्र में साहित्य का अध्ययन किया था। वे अपना लेखकीय आदर्श तमाम बहुजन संतों और साहित्यकारों को मानते हैं। डॉ. जोगीराम ने लिखा है– "कबीर, रविदास, डॉ. अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले, संत गाडगे, नारायण गुरु, ओमप्रकाश बाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिशराय, दयापंवार, तेज सिंह आदि उनके लेखन के प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं।"[2] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि लेखन कर्म में उतरने से पहले ही बेचैन जी ने अपने नायकों का चयन कर लिया था। इसी लिए उक्त सूची को देखने से स्पष्ट होता है कि उसमें एक भी ब्राह्मणवादी साहित्यकार नहीं है। स्वाभाविक है कि लेखन कर्म में प्रवृत्त होने से पहले ही बेचैन जी ने अपनी साहित्यिक प्रतिबद्धता को जाहिर कर दिया था।

दलित आत्मकथाओं के तराजू पर जब 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' को तौलने की कोशिश की जाएगी तो यह स्पष्ट समझ आएगा कि उक्त पुस्तक में वह सब कुछ है जो एक दलित आत्मकथा में होना चाहिए। त्रासद आरम्भ ही उनकी आत्मकथा को वह शक्ति देता है जो पूरी कथा को आद्योपांत बांधे रखता है। पिता की मौत के संदर्भ में ही वे सबसे पहले लिखते हैं– "अब हमारी तबाही और अभावों का क्रम तेज हुआ। तब जाना कि पिता क्या होता है। उसकी कमी बच्चों के जीवन में कितनी बड़ी त्रासदी होती है।"[3] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि बेचैन जी का बचपन किन आभावों में गुजरा होगा। जब पिता का साया बच्चे के सर से उठ जाता है तब उसे देखने वाला दुनिया में कोई नहीं होता। ऐसा इस लिए कहा जा सकता है क्योंकि अगर बच्चे की माँ जवान होती है तो कई बार उसकी दूसरी शादी भी हो जाती है। बेचैन जी के मामले में भी ऐसा ही हुआ। उनकी माँ को दूसरा पति मिल गया लेकिन उन्हें सगा पिता वापस नहीं मिल सका। चूंकि बेचैन जी बचपन से ही पढ़ना चाहते थे इसी लिए उसकी वजह से भी उन्हें डांट –फटकार सुननी पड़ती थी। डॉ. धर्मवीर ने इस संदर्भ में उनकी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखा है– "भूख और गरीबी को सहने के साथ–साथ बालक श्यौराज के मन में पढ़ाई की ललक अतिरिक्त मार बन गई थी।"[4] अपनी इसी बात को आगे बढ़ाते हुए डॉ. धर्मवीर ने लिखा है– "बात पिता की नहीं, बल्कि सगे पिता होने की है। लेखक की माँ ने दूसरी शादी कर ली। उन्हें दूसरा पति मिल गया, लेकिन बालक को सगा पिता नहीं मिला। जो माँ का दूसरा पति है, वह इस बच्चे की पढ़ाई से जलता है, क्योंकि उसका अपना सगा बेटा पढ़ाने पर भी पढ़ता नहीं है।"[5] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि दलितों को हर मोर्चे पर संघर्ष करना पड़ता है। अशिक्षा और कुरीतियां भी दलितों के शोषण में अहम भूमिका निभाती है। गरीब, भूमिहीन दलित का शोषण हर स्तर पर होता है। बेचैन जी अपने आरंभिक जीवन में ही हर स्तर पर प्रताड़ित हुए।

बेचैन जी बचपन से ही अत्यधिक संवेदनशील और चेतनाशील थे। उन्होंने बहुत बचपन से ही भेदभाव का अर्थ समझना शुरु कर दिया था। वे देखते थे कि खेतों में दलित बिरादरी की ही स्त्रियां काम करने जाती हैं। तथाकथित ऊंची जाति की औरतें कभी खेत

में काम करती हुई उन्होंने नहीं देखी। उन्होंने इस दरम्यान यह भी महसूस किया कि अधिकांश मजदूरनियाँ ऊंची जाति के लोगों के खेतों में काम करती हैं। चूंकि दलित भूमिहीन थे इसी लिए उनके पास अपना कोई खेत होता नहीं था इसी लिए मजबूरीवश उन्हें दूसरों के खेत में काम करने जाना पड़ता था। बेचैन जी ने अपनी आंखों से देखा था कि खेत मालिक दलित स्त्रियों की इज्जत लूटने को उतारु रहते थे। उन्होंने लिखा है– "हमारी माँएँ-बहनें मजदूरी करते हुए भी अतिरिक्त सावधान रहती थीं। अपना शील उन्हें प्राणों से भी बढ़कर था, पर सरदार जवान लड़कियाँ देखकर चटकारे लेता था- "वेख ए दे मम्मे वेख, एनू उठाकर गन्ने बिच (ईख में) ले चलें क्या?" हमें बुरा लगता था...क्योंकि ये सब मजदूर लड़कियाँ हम मजदूरों के परिवारों की ही होती थीं। कई बार तो उसने रामा की बेटी पर भी बुरी नजर डाली जो उसकी बीसियों साल से सेवा करते आ रहे थे।"[6] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि दलित स्त्रियों को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। एक तरफ वे परिवार को पालने के लिए कठोर परिश्रम करती हैं तो दूसरी तरफ अपने शरीर पर गिद्ध दृष्टि लगाए हैवानों से भी खुद को बचाती हैं।

बेचैन जी को बचपन में ऐसे दुर्दिन देखने पड़े कि उन स्थितियों की कल्पना मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पिता की मृत्यु के बाद उनकी माँ का दूसरा विवाह हुआ लेकिन उस व्यक्ति की कमाई अधिक नहीं थी इसी लिए समाज के लोगों ने मिलकर उनका तीसरा विवाह भिकारी लाल से करा दिया। स्वाभाविक है यहां भी बेचैन जी प्रताड़ना के ही शिकार हुए। उन्हें जबरन अपने सौतेले पिता को 'दादा' कहना पड़ता था क्योंकि उस गांव में पिता को दादा कहने का रिवाज था। परिस्थितिवश बेचैन जी उसे 'दादा' कहने को मजबूर थे। अपने सौतेले पिता को इतना सम्मान देने के बावजूद उन्हें गालियाँ ही सुननी पड़ती थी। उन्होंने भिकारी लाल के संदर्भ में लिखा है– "मैं अपनी कमाई काऊ दूसरे की औलाद कू काहे कूं खवाऊँ। गे ससुरो मेरे कौन हैं।" वे घर के बाहर बैठे देसी चाप की जूतियाँ बनाते रहते और गालियाँ देते रहते। दर्जनों बार उन्होंने चूल्हे पर से पकी हुई दाल सब्जी नाली में फेंकी होगी। पचासों बार गूंथा हुआ आटा अम्मा के हाथ से छीनकर फेंका होगा। वे देखते कि खाना खाने वाले बच्चों में उसके दो सगे और तीन सौतेले हैं तो वे जल-भुन जाते।"[7] ऐसे परिवेश में पले–बढ़े श्यौराज सिंह बेचैन ने अपने कटु अनुभवों को जितनी प्रामाणिकता से अपनी आत्मकथा में दर्ज किया है, वह 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' को अत्यधिक विशिष्ट बनाती है।

पढ़ाई के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उनकी चेतना को दर्शाती है। दरअसल छुटपन में ही उन्हें यह आभास हो गया था कि उन्हें और उनकी पूरी बिरादरी को भीषण स्थिति से निकालने का एकमात्र माध्यम शिक्षा ही है। इसी तथ्य को जयप्रकाश कर्दम भी रेखांकित करते हैं। उन्होंने लिखा है– "एक कहावत है कि अनपढ़ व्यक्ति को निरा बैल समझो, उसे चाहे जैसे हांक लो। दलितों पर यह कहावत बिल्कुल सटीक बैठती है। शिक्षित साक्षर नहीं होने के कारण दलितों को बेवकूफ बनाकर उनका शोषण किया जाता रहा। बनिये साहूकारों जहाँ कोरे कागजों पर अँगूठे लगवाकर उनके घर-जमीन हड़पते हैं, वहीं चौधरी और जमींदारों ने भी कोई कमी नहीं की है।"[8] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि चेतनाशील और परिपक्व दलित चिंतकों और विचारकों ने इस बात को जीवन के आरंभिक दिनों में ही समझ लिया था कि बिना शिक्षा प्राप्त किए तथाकथित ऊंची जातियों की बराबरी नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि तमाम विभीषिकाओं को झेलते हुए भी बेचैन जी ने अपनी पढ़ाई पूरी की। उन्होंने किन स्थितियों में शिक्षा ग्रहण की इसकी बानगी देते हुए उन्होंने लिखा है– "स्कूली शिक्षा के उन आरंभिक दिनों के बाद मैं दो-चार महीने में केवल एक रात को अम्मा से मिलने पाली जाता।

उस समय भी भिकारी मुझे पढ़ने नहीं देता था। वह मुझे घास खोदने भेज देता। यदि मैं एक-दो दिन रुकता तो वह मृत पशु उठवाता या साइकिल देकर मुर्दा लवारे खोजने भेज देता था... चाहे बाकी सदस्य खाली बैठे रहते। कारण, उसे मेरा पढ़ना-लिखना अखरता था। खासकर स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ना बर्दाश्त नहीं था। मैं डिब्बी जला कर पढ़ने बैठता तो वह लाजिमी तौर पर डिब्बी उठा लेता था। वह इस बात से बहुत परेशान था कि उनका सगा बेटा रूपसिंह एक अक्षर नहीं पढ़ना चाहता और श्यौराज रुकना नहीं चाहता।"[9] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि केवल ऊंची जाति वाले ही नहीं बल्कि अपने परिवार के सदस्य भी दलितों के विकास और उत्थान में बाधक बनते हैं। श्यौराज की मेहनत पर उनका सौतेला पिता किसी भी ढंग से पानी डाल देना चाहता था। यह बेचैन जी की जिजीविषा ही थी कि वे पढ़ सके। सौतेले पिता ने उन्हें पढ़ाई से रोकना चाहा, गरीबी में मेहनत–मजदूरी करके, जूते पॉलिश कर के तथा मास्टर प्रेमपाल सिंह के खेतों की देखभाल करते हुए वे पढ़ सके। पढ़ाई के प्रति एक अजीब किस्म की ललक देख कर ही मास्टर प्रेमपाल ने बालक बेचैन की माँ को उसे स्कूल भेजने को कहा था। और साथ ही उन्हें यह भी कहा था कि मैं उन्हें पढ़ने का मौका दूंगा तो बदले में कुछ काम तो कराउंगा ही। जब बेचैन ने अपने पढ़ने का निर्णय स्पष्ट कर दिया तब उनकी सगी माँ तक ने उनका साथ नहीं दिया और पूरी कठोरता से कहा– "आज से मैं समजुंगी कि सौराज मरि गओ। मैंने एक बेटा पैदा ही नाँय करो, मैंने नौ महीना अपनी कोख में एक पत्थर ढोओ। आज से सौराज पूरी वस्ती कूँ मरे के बराबर है। अब तू जो मन में आवै सो करि। जब पढ़न की उमरि रही तब तो पढ़ि नाँय पाओ अब दुए रोटी को काम कन्न लाक भओ है तो मिस्त्री के औजार छोड़ि कें कलम चलावैगो। मैंने कब नाँय पढ़ानो चाहो, जो इतनो ही भाग वालो हो तो बाप काहे कूँ मरी गओ तेरो ? अब चार पैसा कमावन लाक भओ है तौ हमारो पेट भन्नो छोड़ि स्कूल के लालच में घर छोड़ि रओ है। तेरो जैसो दूसरो कोई निर्मोही होइगो जा दुनिया में? अब जहाँ मन आवै, चलो जा। मैं सबुर करि लिउँगी। जिन्दी रही तो देखउँगी तू कैसों पटवारी, मुंशी या सिपाही बनेगौ?"[10] माँ की उक्त पंक्तियाँ निश्चित रुप से हृदय को चीरने वाली हैं लेकिन उनकी माँ का भी कोई दोष नहीं था। वह जिन विषम स्थितियों से जूझ रही थीं उसमें यह कल्पना कर पाना कि पढ़–लिख कर उनका लड़का बहुत नाम कमाएगा यह लगभग असंभव था।

डॉ. धर्मवीर ने अपनी पुस्तक 'बालक श्यौराज : महा शिलाखण्डों का संग्राम' में दलित आत्मकथाओं और विशेष कर चमार जाति के लोगों की आत्मकथाओं के संदर्भ में एक बहुत मानीखेज टिप्पणी की है। उन्होंने लिखा है– "जब कोई चमार जाति का व्यक्ति अपनी आत्मकथा लिखता है तो उसे एक बात बतानी ही पड़ती है कि जारकर्म, और अवैध संबंध, और अवैध संतान क्या होती है। यदि वह ऐसा नहीं बताता है तो समझ लो कि वह पूरी बात नहीं बता रहा है।"[11] उक्त पंक्तियां अपने आप में बहुत भयावह प्रतीत होती हैं। दलित स्त्रियों को अपने जीवन में जिस प्रकार के शोषण का सामना करना पड़ता है उसकी बानगी है उपर्युक्त पंक्तियां। दलित स्त्री चाहे किसी से भी विवाहित हो अंततः वह उस जमींदार की हो जाती है जहां उसका मर्द मजदूरी करता है। इस तथ्य को डॉ. धर्मवीर ने व्याख्यायित करते हुए लिखा है– "दलित पुरुष दोहरा गुलाम होता है। जब वह जमींदार का गुलाम है तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह मात्र आर्थिक रूप से गुलाम है, बल्कि इसका मतलब यह भी होता है कि वह पारिवारिक रूप से भी गुलाम है। कारण यह है कि उसकी पत्नी को जमींदार रखता है। इसलिए, चमार बाहर जमींदार का गुलाम होता है, और घर में जमींदार की रखैल के रूप में अपनी पत्नी का गुलाम होता है। यह गुलामी की दोहरी मार होती है। यह मार तिहरी और चोहरी हो जाती है जब उसकी पत्नी के पेट से जमींदार के बच्चे पैदा होते हैं।"[12] उक्त

पंक्तियां निश्चित रूप से बेहद मार्मिक हैं। दलितों के जीवन की यह त्रासदी 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में भी नजर आती है। बेचैन जी ने लिखा है– "जाट ने जीजाजी के पिता के रहते उनकी माँ फूलवती को अपने घर में रख लिया था। उन्हीं के घर जिस बच्चे का जन्म हुआ था, उसका नाम 'हरिजन' रखा गया था। बाद में हरिभजन और अब भज्जन। किंतु सामाजिक दबाव और सवर्ण स्वभाव के कारण उन्होंने उन्हें छोड़ दिया था। वे रखैल को पत्नी का दर्जा नहीं दे सके थे। उसके बाद भज्जन की माँ फूलवती की असमय मृत्यु हो जाने के कारण यह दोस्ती या जार-कर्म का सिलसिला वहीं समाप्त हो गया था। पर खून में उतर जाने वाले रिश्ते क्या ऐसे समाप्त होते हैं?"[13] उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि दलितों की त्रासदी को प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन ने संपूर्णता में अपनी आत्मकथा में उद्घाटित किया है। दलितों को समाज में किस प्रकार सताया जाता है इसका जितना यथार्थ वर्णन तुलसीराम ने 'मुर्दहिया' में किया है, उससे कहीं अधिक प्रामाणिकता से बेचैन जी ने 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में उसे उद्घाटित किया है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के विमर्शवादी युग में जब दलित विमर्श साहित्यिक दृष्टि से बिल्कुल स्थापित हो चुका है ऐसे में 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' एक आत्मकथा के रूप में विशिष्ट छाप छोड़ती है। दलितों की पीड़ा के जो विविध आयाम हैं, वे सब उक्त आत्मकथा में उद्घाटित हुए हैं। दलित जीवन कोई भी कोना लेखक की निगाह से अलक्षित नहीं रहा है। स्वयं लेखक ने इतना कुछ भोगा है कि उनकी कहानियां ही रोंगटे खड़े कर देती हैं। बेचैन जी ने जितनी सहज भाषा में अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, वह उन्हें अन्य दलित आत्म कथाकारों से अलग खड़ा करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. राम, डॉ. जोगी, दलित चेतना डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', वान्या पब्लिकेशंस, संस्करण–2020, पृष्ठ–13.
2. वही.
3. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृष्ठ–29.
4. डॉ. धर्मवीर, बालक श्यौराज महा शिलाखण्डों का संग्राम, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2014, पृष्ठ–61.
5. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृष्ठ–146.
6. वही.
7. वही, पृष्ठ–168.
8. दलित साहित्य : समग्र परिदृश्य, संपादक– मनोहर भंडारे, मनुष्यता का अदावा करती दलित कथाएं, जयप्रकाश कर्दम, स्वराज प्रकाशन, संस्करण–2013, पृष्ठ–128.
9. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृष्ठ–332.
10. वही, पृष्ठ–301.
11. डॉ. धर्मवीर, बालक श्यौराज महा शिलाखण्डों का संग्राम, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2014, पृष्ठ–70.
12. बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2009, पृष्ठ–133.
13. वही.

•